Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५.3 v2

ओ३म्

ो प्रामाणिकता

तथा

षि दयानन्द

डा० श्रीनिवास शास्त्री

श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति
आर्यसमाज, करोलबाग, नई दिल्ली-५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ.पु.
मा.ज.बि.

ओ३म्

वेदों की प्रामाणिकता

तथा

ऋषि दयानन्द

155/4

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी......
पु०सं० 1483
भारती पुस्तकालय

डा० श्रीनिवास शास्त्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रकाशक:—
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विश्वम्भरदास

संयोजक—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति

आर्यसमाज करोलबाग, नई दिल्ली-११०००५

प्रथम संस्करण

सं० २०४०, सन् १९८३

मूल्य १-५०

मुद्रक:—

शान्तिस्वरूप कपूर

रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस

बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

155/4

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति देहली का संक्षिप्त परिचय	१
श्री डा० श्रीनिवास शास्त्री का संक्षिप्त परिचय	६
वेदों की प्रामाणिकता तथा ऋषि दयानन्द	९-३५
प्रामाणिकता शब्द का अर्थ	९
वेदों की प्रामाणिकता के विषय में दो दृष्टियों से विचार	१०
मध्यकालीन वेद-विषयक धारणा	१२
ऋषि दयानन्द की वेद-विषयक धारणा	१३
वेद का उदय क्यों और कब	१४
वेद प्रामाण्य का विरोध	१५
वेद प्रामाण्य की स्थापना	१६
दर्शनों में वेद प्रामाण्य	१७
वेद-विरोधी मत	१९
वेद विरोधियों के आक्षेपों का परिहार	२०
पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में वेद प्रामाण्य	२१
वेद प्रामाण्य का द्वैविध्य-परतःप्रमाण एवं स्वतःप्रमाण	२१
ऋषि दयानन्द के मत में वेद स्वतःप्रमाण	२३
मीमांसकों द्वारा वेद-प्रामाण्य प्रतिपादन	२४
नव्य वेदान्तियों द्वारा वेद-प्रामाण्य का प्रतिपादन	२५
सांख्य शास्त्रानुसार वेद का स्वतःप्रामाण्य	२६
ऋषि दयानन्द की दृष्टि में 'स्वतःप्रामाण्य' का स्वरूप	२८
ऋ० द० द्वारा वेद विरोधी मतों का निराकरण	२९
वेदों के स्वतःप्रामाण्य में हेतु	३१

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी......
पुस्त०......1923
आर्षी पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-कन्या-महा-विद्यालय ... 1983

संक्षिप्त परिचय

सुविख्यात वैदिक रिसर्च-स्कालर पीयूषपाणि स्वर्गीय श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री उन गण्यमान व्यक्तियों में से थे, जिनका सारा जीवन वेद और महर्षि दयानन्द-कृत ग्रन्थों के अध्ययन, अनुशीलन तथा आर्यसमाज की सेवा के लिये समर्पित रहा। भारत विभाजन के समय आप लाहौर से दिल्ली आ गये थे।

शास्त्री-परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही आपने कई एक आर्यसंस्थाओं में कार्य किया। कुछ दिन श्री पं० भगवद्दत्त जी के साथ वैदिक-शोध-विभाग में कार्य करने के पश्चात् आप दयानन्द ब्राह्म-महा-विद्यालय के उपाचार्य नियुक्त हुये।

वेद-वाङ्मय के अध्ययन में आप की विशेष रुचि थी। सामयिक राजनीति में भी आप ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। अतः स्वाभिमान और स्वातन्त्र्य प्रवृत्ति के कारण आपने विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। संभ्रान्त मित्रों के परामर्श से आपने आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र का गहन अध्ययन किया कि थोड़े ही समय में इस विज्ञान में भी आपने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। कुछ दिन आप तत्कालीन भारत प्रसिद्ध वैद्यराज श्री योगेश्वर जी कनखल वालों के शिष्य रहे; और उदर-रोग-विशेषज्ञ के रूप में लाहौर में ही कार्य प्रारम्भ कर दिया। अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते हुए भी वैदिक-अनुसन्धान और अनुशीलन का कार्य भी निरन्तर चलता रहा।

देश-विभाजन के पश्चात् दिल्ली में करौलबाग में अपना औषधालय बना लिया। यहां भी आपकी थोड़े समय में ही प्रसिद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यों में गणना होने लगी। 'वेदों में आयुर्वेद' पुस्तक लिखकर आप ने विद्वानों को चकित कर दिया। उ० प्र० सरकार द्वारा आपको पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

वेदगोष्ठी का सूत्रपात

१९७० की बात है श्री डा० वेदमित्र जी ने श्री शास्त्री जी के पास आकर सूचित किया कि दिल्ली विश्वविद्यालय के एक व्याख्याता ने वेदों पर अनर्गल आक्षेप किये हैं। उनका आर्यसमाज की ओर से उत्तर अति-आवश्यक है। उसी समय श्री विश्वम्भर-दास (आर्य-समाज के मन्त्री) श्री शास्त्री जी के पास ही बैठे थे। उनके आग्रह से श्री शास्त्री जी ने आर्य-समाज के तत्त्वावधान में 'वेद गोष्ठी' की स्थापना कर दी। 'वेद-गोष्ठी' का मुख्य उद्देश्य "विदेशीय तथा स्वदेशीय तथा-कथित विद्वानों द्वारा वेद सम्बन्धी किये गये भ्रान्त, अनर्गल और निराधार आक्षेपों और भ्रान्तियों का का युक्ति युक्त सप्रमाण समाधान करना" रखा गया।

श्री शास्त्री जी के मार्ग दर्शन, प्ररेणा, कतिपय विद्वानों के सहयोग और आर्यसमाज करौलवाग के अन्तर्गत, उन्हीं की सहायता से २५ अक्टूबर १९७० को पहिली वेदगोष्ठी का आयोजन हुआ पहिला व्याख्यान भी श्री शास्त्री जी का हुआ। विषय था—'आर्य और दस्यु'। आर्यसमाज के अनेक मूर्धन्य विद्वानों के सम्मिलित होने से 'वेदगोष्ठी' को आर्यजगत् में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा मिली।

श्री शास्त्री जी के जीवन काल में सात (७) वेद-गोष्ठियों का सफलता पूर्वक आयोजन होता रहा। श्री शास्त्री जी के कर्म-योगी और यशस्वी जीवन का अकस्मात् अन्त (८ जून १९७४) हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति

पुण्यश्लोक श्री वैद्य जी की स्मृति को अक्षुण्ण और चिरस्थायी वनाने तथा उनके वेद सम्वन्धी स्वप्नों को मूर्तरूप देने के लिये आर्यसमाज करौलवाग के अन्तर्गत "श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति" का गठन किया गया। 'समिति' निरन्तर "गोष्ठियों" की श्रृंखला द्वारा श्री शास्त्री जी के मिशन का पूर्णतया पालन कर रही है।

आज तक की गोष्ठियों का विवरण इस प्रकार है—

श्री शास्त्री जी के जीवन काल में—

(१) २५ अक्टूबर १९७०—

अध्यक्ष— पं० उदयवीर जी शास्त्री, गाजियाबाद
विषय—क्या आर्य भारत में वाहर से आये ? आर्य और दस्यु
व्याख्याता—श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री

(२) २० दिसम्वर, १९७०—

अध्यक्ष—श्री उदयवीर जी शास्त्री
विषय—वेदों में गंगादि नदियां क्या ऐतिहासिक हैं ?

(३) २४ अप्रैल १९७१—

अध्यक्ष—श्री वैद्य गुरुदत्त जी एम० एस० सी०
विषय—भारत में आर्य सभ्यता से पूर्व कोई सभ्यता नहीं थी

(४) २१ नवम्वर १९७१—

अध्यक्ष—आचार्य जगदीश चन्द्र जी एम० ए०
विषय—पिता की चल-अचल सम्पत्ति का अधिकार किसको? सन्तान को या राष्ट्र को !

पाणिनि-कन्या-अनुसन्धान ... पुस्तक० 1983

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) २९ अप्रैल १९७२—
अध्यक्ष—श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक, सोनीपत
विषय—वेद में आख्यानों के यथार्थ स्वरूप

(६) २ जनवरी १९७३—
अध्यक्ष—आचार्य उदयवीर जी शास्त्री
विषय—वेद में अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता चेतन वा अचेतन ?—गोष्ठी दो बार हुई।

(७) २८ अप्रैल १९७३—
अध्यक्ष—श्री उदयवीर जी शास्त्री
विषय—वेद में देवता चेतन अथवा अचेतन ?
"स्मारक समिति" की ओर से निम्न गोष्ठियां हुई :—

(८) ११ सितम्बर १९७१
अध्यक्ष—श्री वैद्य गुरुदत्त जी एम० एस० सी०
विषय—वेदों में त्रैतवाद
निबन्ध वाचन—श्री स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती, ज्वालापुर

(९) २७ अक्टूबर १९७८—
अध्यक्ष—डा० सत्यव्रत जी, भू० पू० उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी
विषय—वेदार्थ की विभिन्न प्रक्रियाएं तथा उनके सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य का महत्त्व।
व्याख्याता—श्री डा० रामनाथ जी वेदालंकार, चडीगढ़

(१०) २८ सितम्बर १९८०
अध्यक्ष—प्राचार्य श्री वैद्य ब्रह्मदत्त जी शर्मा
विषय—आधुनिक सायन्स और वेद
व्याख्याता—वैद्य गुरुदत्त जी एम० एस० सी०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) ८ अगस्त १९८२

अध्यक्ष—श्री प्रो० वेदव्यास जी एम० ए०, एल० एल० बी०, सीनियर एडवोकेट

सान्निध्य—न्यायमूर्ति श्री हंसराज जी खन्ना

विषय – वेदों की प्रामाणिकता और ऋषि दयानन्द

व्याख्याता—श्री डा० श्री निवास जी शास्त्री, कुरुक्षेत्र

"श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री स्मारक समिति" की ओर से इन वेद-गोष्ठियों का कार्यक्रम अत्यन्त सुचारु रूप से सफलता के साथ सम्पन्न होता रहा है। आर्य-समाज के संरक्षण में प्रत्येक व्याख्याता विद्वान् महोदय की सेवा में 'समिति' की ओर से ५००) की साधारण सी राशि, नारियल और दोशाला दक्षिणारूप में समर्पित किये जाते हैं। 'समिति' आर्य-समाज करौलवाग की विशेष ऋणी है। प्रायः व्यय-वहन आर्य-समाज की ओर से ही होता है।

इस अवसर पर अनेक विद्वानों का सक्रिय सहयोग और अन्य समाज के अधिकारियों का साहाय्य भी समिति को मिलता रहा है।

प्रस्तुत 'निवन्ध' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्री डा० श्रीनिवास शास्त्री जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रासंगिक विषयों पर प्रकाश डाला है। अतः शोध-विद्यार्थियों, अनुसन्धान-कर्त्ताओं और वेद प्रेमियों के लिये यह निवन्ध मार्गदर्शकरूप सिद्ध हो सकता है।

आशा है वेद-मर्मज्ञ प्रस्तुत निवन्ध से पूरा लाभ उठायेंगे। सभी वन्धुओं से सक्रिय सहयोग की आकांक्षा के साथ

विश्वम्भर दास
संयोजक
श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० श्रीनिवास शास्त्री

(संक्षिप्त परिचय)

श्रीनिवास शास्त्री का जन्म (१ अगस्त १९१६) मेरठ जनपद के रसूलपुर जाहिद नामक ग्राम में एक किसान जमीदार श्रीयुत चन्द्रभानु नम्बरदार के गृह में हुआ। बाल्यकाल की शिक्षा निकट के ग्रामों तथा कस्बों में हुई। मिडिल करने के पश्चात् पिता के आर्यसमाज एवं ऋषि दयानन्द के प्रति विशेष आस्थावान् होने के कारण गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की ओर प्रवृत्ति हुई। फलतः श्री विजयेन्दु (म० फतहचन्द), स्वामी व्रतानन्द (आचार्य गुरुकुल चित्तौड़ गढ़) तथा श्री भद्रजित् आयुर्वेद-शिरोमणि आदि महानुभावों के अनुग्रह से लगभग दो वर्ष तक संस्कृत भाषा एवं अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। पांच-छह मास इधर उधर भ्रमण के अनन्तर गुरुकुल डौरली मेरठ में अध्ययन तथा अध्यापन आरम्भ किया और दयानन्द पाठविधि में दृढ विश्वास होने के कारण कई वर्ष बिना परीक्षा के ही महाभाष्य, न्याय, निरुक्त आदि का अध्ययन करते रहे। तत्पश्चात् गुरुकुल डौरली के तत्कालीन आचार्य पं० लेखराम शास्त्री एवं मन्त्री पं० शिवदयालु जी के प्रयास से कलकत्ता की सांख्य-योग, व्याकरण तथा वेदान्त तीर्थ, पञ्जाब की शास्त्री तथा बनारस की प्राचीन न्याय शास्त्री आदि परीक्षाएं उत्तीर्ण करते हुए गुरुकुल की विद्यावारिधि उपाधि भी प्राप्त की। १९३९ में प्रधा-नाध्यापक तथा उपाचार्य के रूप में गुरुकुल डौरली में ही कार्य आरम्भ किया और वहां एक वर्ष तक अवैतनिक कार्य करते रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४० में अन्तर्जातीय विवाह करके उसी गुरुकुल में १९४९ तक उपाचार्य तथा आचार्य रूप में सेवा कार्य किया।

सामयिकी शिक्षा की ओर प्रवृत्त होकर हिन्दी तथा संस्कृत की एम० ए० परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं और लगभग १० वर्षों तक हिन्दी प्राध्यापक के रूप में कार्य करके १९६१ में श्री वर्धमान कालेज (पोस्ट-ग्रेजुएट) बिजनौर में संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किये गये। इसी समय १९६२ में डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के निर्देशन में आगरा विश्वविद्यालय से पी--एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् १९६३ में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय संस्कृत-विभाग में नियुक्ति हुई, जहां दस वर्ष प्राध्यापक के रूप में, दो वर्ष रीडर के रूप में तथा ६ वर्ष तक हरियाणा राज्य द्वारा स्थापित दयानन्द-पीठ के आचार्य (प्रोफेसर) के रूप में कार्य किया। शास्त्री जी सदा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपतियों, संस्कृत-विभाग के अध्यक्षों विशेषकर डा० गोपिकामोहन भट्टाचार्य के अनुग्रह-भाजन रहे, इन्होंने छात्रवर्ग द्वारा सम्मान एवं स्नेह प्राप्त किया तथा अनेक शोधार्थियों का शोधकार्य-निर्देशन भी किया। १९८१ में विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होकर एक वर्ष तक अवैतनिक प्रोफेसर के रूप में कार्य भी किया।

विविध विषयों पर शास्त्री जी की लगभग डेढ दर्जन पुस्तकें तथा पचास शोध-पत्र लिखे प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी पुस्तकों में 'वाचस्पति मिश्र द्वारा बौद्धदर्शन का विवेचन' (शोध प्रबन्ध), तर्क भाषा-न्याय-विन्दुटीका-काव्यप्रकाश-दशरूपक आदि की विशद हिन्दी व्याख्याएं एवं ऋषि दयानन्द विषयक चार मौलिक ग्रन्थ— दयानन्ददर्शनः एक अध्ययन, वेद तथा ऋषि दयानन्द, वेदप्रामाण्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसा तथा ऋषि दयानन्द, वेद नित्यता तथा ऋषि दयानन्द, विशेष उल्लेखनीय हैं। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् वेद तथा भारतीयदर्शन के अध्ययन एवं अनुसन्धान में ही इनका समय व्यतीत हो रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों की प्रामाणिकता
तथा
ऋषि दयानन्द

वेदों की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए किन्हीं मन्तव्यों को सिद्धवत मानकर ही आगे बढ़ना है। उदाहरणार्थ, वेद शब्द का वाच्य क्या है ? यहां इस विषय का विवेचन न करते हुए वेद के अनुयायियों तथा वेद के विरोधियों ने वेदप्रामाण्य के पक्ष या विपक्ष में जो युक्तियां प्रस्तुत की हैं, उन सभी पर विचार करना है। अतः जिस अर्थ की विवक्षा करके वेद-प्रामाण्य का विरोध या समर्थन करने वालों ने वेद शब्द का प्रयोग किया है, वह अर्थ यहां अभिप्रेत है। यहां, कहीं-कहीं प्रयोक्ता के अभिमत अर्थ की ओर संकेत अवश्य कर दिया गया है।

प्रामाणिकता शब्द का अर्थ

प्रामाणिकता शब्द का अर्थ है—प्रामाण्य, प्रमाणत्व, प्रमाणपना। सामान्यतः किसी तथ्य के निश्चायक को प्रमाण कहा जाता है। जैसे "इस घटना का साधक यह प्रमाण है।" तर्कशास्त्र में "प्रमा" अर्थात् यथार्थ अनुभव के करण साधन प्रत्यक्ष आदि को प्रमाण कहा जाता है **प्रमाकरणं प्रमाणम्**। प्रमा का अर्थ है किसी पदार्थ का यथार्थ अनुभव। इसका साधन ज्ञान है अथवा ज्ञान भिन्न भी है, यह विवाद का विषय है जिस पर यहां विचार नहीं करना है। "**प्रमाणानां प्रामाण्यम्**"=प्रमाणों की प्रामाणिकता या प्रमाण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन। इस प्रयोग में यदि दूसरे "प्रमाण" शब्द का अर्थ प्रमाकरण ही लिया जाये तो पुनरुक्ति मात्र होगी। किञ्च, प्रामाणिकता के प्रसंग में स्मृति की यथार्थता पर भी विचार करना अभीष्ट है। अतः यह कथन स्मृति पर घटित न हो सकेगा। इसीलिये यहां प्रामाण्य या प्रामाणिकता का अर्थ है—यथार्थता, याथार्थ्य। परवर्ती ग्रन्थों में प्रामाण्य का यह अर्थ स्पष्टतः अभिहित किया गया है।[1] इस प्रकार वेदों की प्रामाणिकता का अभिप्राय है—ऋग्वेद आदि चारों वेदों की यथार्थता।

वेदों की प्रामाणिकता के विषय में दो दृष्टियों से विचार

वेदों की प्रामाणिकता के विषय में दो दृष्टियों से विचार किया जाता रहा है। एक तो यह कि वेद यथार्थ ज्ञान के साधन हैं। यहां "वेद" शब्दरूप या वाक्यरूप वेद के लिये आता है। इस का अभिप्राय है कि वेदों का शब्द प्रमाण के भीतर ग्रहण होता है। "वेद प्रमाण हैं", इस कथन का दूसरा अर्थ है कि वेद-प्रतिपादित ज्ञान यथार्थ है। यहां वेद का अर्थ है—वेदों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान। जो तर्कशास्त्री केवल ज्ञान को ही प्रमाण मानते हैं ज्ञान-भिन्न को नहीं, उन के मतानुसार वेद-प्रतिपादित ज्ञान ही इस निबन्ध का विषय है। वस्तुतः यहां वेदों के शब्द-वाक्य तथा वेद-प्रतिपादित ज्ञान दोनों की प्रामाणिकता पर विचार करना अभीष्ट है। भारतीय वाङ्मय में दोनों दृष्टियों से ही विचार किया जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में शब्द-प्रमाण के अंगरूप में वेदों की प्रामाणिकता पर अधिक विचार किया गया था। मीमांसासूत्र तथा शाबरभाष्य से यह तथ्य प्रकट होता है। सूत्र में कहा गया है—"तत्प्रमाणं

---

१. (क) यथार्थपरिच्छेदकत्वं प्रामाण्यम्। श्रीधर, न्यायकन्दली।
(ख) ज्ञानस्य याथार्थ्यलक्षणं प्रामाण्यम्। केशवमिश्र, तर्कभाषा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादरायणस्यानपेक्षत्वात्" १।१।५ इस सूत्र में तत् शब्द से वेदवचन 'वेदोपदेश' का ग्रहण किया जाता है। शावर-भाष्य में अन्यत्र स्पष्ट ही कहा है। —"न तु वेदवचनस्य मिथ्यात्वे किंचन प्रमाणमस्ति"।[1] न्यायसूत्र से भी यही सिद्ध होता है। तदप्रामाण्यम् २।१।५७ तथा 'तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् २।१।६९ में न्यायभाष्य के अनुसार शब्द विशेष के प्रामाण्य का विचार किया गया है। वात्स्यायन कहते हैं तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवान् ऋषिः"।[2] इसी प्रकार उन्होंने कहा है-- "प्रमाणं शब्दो यथा लोके।[3] वैशेषिक सूत्र में जो कहा गया है—"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" १।१।३।। यहां तद्" शब्द के अर्थ में मतभेद है तथापि इससे यह प्रतीत होता है कि यहां वेदवाक्य की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। भारतीय वाङ्मय के अन्य अनेक सन्दर्भों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहां "वेद प्रमाण है"। इस वाक्य का अर्थ है वेद प्रतिपादित ज्ञान यथार्थ है। जव योगसूत्र तथा भाष्य में चित्तवृत्ति अथवा ज्ञान को ही आगम प्रमाण कहा गया है—आप्तेन दृष्टाऽनुमितो वाऽर्थः परत्र बोधसंक्रान्तये शब्देन उपदिश्यते शब्दान् तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः।[4] वहां आगम' की दृष्टि से "वेद प्रमाण है" वाक्य में वेद शब्द का अर्थ होगा—वेद प्रतिपादित ज्ञान, वेद-वाक्यों से होने वाला ज्ञान। सांख्य के विविध ग्रन्थों में ज्ञान को ही प्रमाण कहा गया है। इस दृष्टि से वेद-प्रतिपादित ज्ञान की यथार्थता ही वहां विचारणीय है। और यथार्थता के साथ-साथ ज्ञानों की अयथार्थता

---

१. शावरभाष्य, मीमांसासूत्र १।१।२।।

२. वात्स्यायनभाष्य, न्यायसूत्र २।१।५७।।

३. वही, २।।१।६१।।

४. योगभाष्य, १।७।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी विचार किया जाता है। यह सभी विचार भारतीय दर्शन में प्रामाण्यवाद के नाम से अभिहित किया जाता है। वेद-प्रामाण्य तथा तत्संबन्धी विविध मतों के परिप्रेक्ष्य में ऋषि दयानन्द के वेद-प्रामाण्यविषयक मत का परिशीलन करना ही प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य है।

प्रश्न हो सकता है जिस समाज में पुनः पुनः दोहराया जाता है—**"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना—पढ़ाना और सुनना—सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"**; वहां वेदों की प्रामाणिकता के विचार का क्या महत्त्व है ? इस विषय में यही नम्र निवेदन है—"वेद प्रमाण हैं", इस भाव को ही "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" यह वाक्य प्रकारान्तर से कहता है।

मध्यकालीन वेद-विषयक धारणा

मध्यकाल में यह धारणा बन गई थी कि वेद के पूर्वकाण्ड का विषय धर्म है और उत्तरकाण्ड का विषय ब्रह्म है—**वेदे पूर्वोत्तर-काण्डयोः धर्मब्रह्मणी विषयः**,[1] यहाँ पूर्वकाण्ड में मन्त्र और ब्राह्मण का समावेश है और उत्तरकाण्ड में उपनिषदों का। उस समय वेद के अर्थज्ञान को यज्ञानुष्ठान का अंग समझा जाता था—**अर्थज्ञानस्य तु यज्ञानुष्ठानर्थत्वात्**।[2] सायणाचार्य से पूर्व भी मध्यकाल में यह धारणा दृष्टिगोचर होती है। शबरस्वामी कहते हैं—**नः केवलं लोके वेदेऽपि 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' (ऋ० १०।९०।१६) इति यजतिशब्दवाच्यमेव धर्मं समामनन्ति**।[3] इस

---

१. सायणाचार्य, ऋग्वेदभाष्यभूमिका (पृ० ११३)

२. सायणाचार्य, ऋग्वेदभाष्यभूमिका (पृ० ५)।

३. शाबरभाष्य, मीमांसा सूत्र १।१।२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन से प्रकट होता है कि "याग" आदि धर्म हैं। इसी प्रकार आर्य भट्ट ने महासिद्धान्त नामक ग्रन्थ में बतलाया था—"**वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः**[1]। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस धारणा के संकेत मिलते हैं। यजुर्वेद (१।१) के "**श्रेष्ठतमाय कर्मणे**" के सन्दर्भ में शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म** (१।७।२५) यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। संभवतः इस प्रकार के स्थलों पर "यज्ञ" शब्द का रूढ़ अर्थ लेकर परवर्ती काल में अग्निहोत्र आदि यज्ञों को ही वेदों का एकमात्र प्रतिपाद्य विषय मान लिया गया था।

ऋषि दयानन्द की वेद-विषयक धारणा

ऋषि दयानन्द ने अपनी व्यापक दृष्टि से एक ओर तो 'यज्ञ' शब्द का यौगिक अर्थ दिखलाया दूसरी ओर यह भी घोषणा की—'सायणाचार्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थ को नहीं जानकर कहा है कि 'सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं', यह उनकी बात मिथ्या है"[2]। उन्होंने केवल चार संहिताओं को ही वेद मानते हुए यह भी बतलाया कि वेदों में दो विद्याएं हैं एक अपरा दूसरी परा।[3] और यह भी कि ईश्वर में ही सब वेदों का तात्पर्य है किन्तु वेदों में ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान सभी का प्रतिपादन किया गया है[4]। वेदाध्ययन की प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा वेदाध्ययन के तीन स्तर हैं—एक केवल पाठ, दूसरा अर्थज्ञान सहित अध्ययन और तीसरा वेदों को पढ़ कर और समझ कर श्रेष्ठ गुण, कर्म, आचरण का ग्रहण करके सब का उपकार करना[5]। इस

---

१. महासिद्धान्त (बनारस, १९१०)। ३॥

२. ऋग्वेदादि०, भाष्यकरण० पृ० ३६६। ३. वही, वेदविषय०, पृ०४९।

४. वही, पृ० ४७-४८।   ५. द्र० वही, पठन-पाठन०, पृ० ३५९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वह सभी ज्ञान वेदों से प्राप्त होता है जो मानव के अभ्युदय तथा निःश्रेयस का साधन है। यही ज्ञान सत्य विद्या है। इसके बोधन में वेद प्रमाण हैं, यथार्थज्ञान के साधन हैं। जो आधुनिक विद्वान् वेदों के आधार पर भारत की प्राचीन संस्कृति, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों की कल्पना करते हैं उनके मत का भी ऋषि दयानन्द ने निराकरण किया है और युक्ति तथा प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि वेद में कोई अनित्य इतिहास नहीं है। इस विषय का अभी आगे निरूपण किया जायेगा। इस प्रकार यदि वेदों की प्रामाणिकता किसी सीमित क्षेत्र में स्वीकार की जायेगी तो वेद जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार न हो सकेंगे। अतः प्रस्तुत विषय वेदाध्ययन का आधारभूत उपादान है।

वेदप्रामाण्य का उदय क्यों और कब

अब विचारणीय है कि वेदवचन प्रमाण है अथवा वेदोक्त ज्ञान प्रमाण है। इस विचार का उदय क्यों और कब हुआ होगा ? भारतीय इतिहास की जटिलताओं में से मार्ग खोजने वाले मनीषियों ने इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास तो किया है, किन्तु भारत के गौरवमय अतीत के इतिहास के समान इसका उत्तर भी विवाद-ग्रस्त ही रहा है। उपलब्ध भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन से इतना प्रतीत होता है कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के प्रति नतमस्तक होकर वेदों की प्रामाणिकता स्वीकारी जाती रही, वेदोक्त विधान का विरोध करने का अवसर ही नहीं आया। यदि कहीं वैमत्य भी हुआ तो वेदों के आधार पर ही अपनी व्याख्या कर दी गई। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदमन्त्रों का विनियोग यज्ञ में दिखला दिया गया और उपनिषदों में सभी वेदों को ओम् शब्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके अर्थ ब्रह्म का प्रतिपादक बतलाया गया। "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति"[1]। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में वेद-वचनों को प्रमाण रूप से उद्धृत किया गया—तदेतदृचाभ्युक्तम्[2]। यही नहीं, महाभाष्यकार पतंजलि ने बतलाया है कि प्राचीन काल में समाज का बुद्धिप्रधान वर्ग ब्राह्मण धर्म के रूप में वेदों का अध्ययन करता था[3]।

वेद-प्रामाण्य का विरोध

महाभाष्य के काल में ही नवयुवकों की धारणा कुछ बदल चुकी थी—**तदद्यत्वे न तथा**। संभवतः उस समय वेदाध्ययन की अनिवार्यता अथवा एकमात्र वेदों की प्रामाणिकता के विषय में कुछ 'ननु न च" किया जाने लगा था—उससे पूर्वकाल में भी वेदों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया था, यह प्रतीत होता है। निरुक्तकार यास्क से पूर्व ही कौत्स जैसे विद्वान् मन्त्रों को अनर्थक कहने लगे थे। स्व० पं० भगवद्दत्त जी का विचार है कि कौत्स ने यज्ञ के फल की दृष्टि से मन्त्रों को अनर्थक बतलाया था, वस्तुतः वे मन्त्रों को अनर्थक बतलाकर वेद के प्रामाण्य को चुनौती देने नहीं चले थे[4]। तथ्य कुछ भी हो कौत्स का मत वेद को सर्वथा प्रमाण मानते चले आने की परम्परा में एक नवीन क्रान्ति थी, जो शब्द या वाक्य अर्थ का बोधक ही नहीं वह प्रमाण कैसे हो सकता है।

---

१. कठोपनिषद्, १।२।१५॥

२. शतपथ १०।५।५।१८, प्रश्नोपनिषद् १।७॥

३. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च, इति। महाभाष्य, पस्पशा०, पृ० १६।

४. निरुक्तशास्त्रम्, १।१५, पृ० ४८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हां, कौत्स का मत उस समय का सर्व-स्वीकृत मत नहीं था, यास्क ने कौत्स की युक्तियों का निराकरण करके वेदमन्त्र सार्थक हैं, यह स्थापना की है। "मन्त्र अनर्थक हैं" इस प्रकार का भाव मीमांसा-सूत्रों में भी पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसका निराकरण भी कर दिया गया है।[1] वेद-प्रामाण्य को यह चुनौती प्रथमतः किसके द्वारा दी गई थी ? यह निश्चित रूप से कहना कठिन है।

ऐसा प्रतीत होता है कि चार्वाक, बौद्ध तथा जैन आदि मतों द्वारा वेद-प्रामाण्य का विरोध किया गया था। संभवतः प्रथमतः चार्वाक की ओर से वेद विरोध किया गया। तत्पश्चात् बौद्ध और जैनमत के अनुयायियों ने वेद विरोध प्रकट किया। चार्वाक के अन्तर्गत अनेक वेद-विरोधी सम्प्रदाय हैं। चार्वाक के आविर्भाव का समय भी निश्चित नहीं है।

वेदप्रामाण्य की स्थापना

दूसरी ओर वेद के अनुयायियों ने वेदों की प्रामाणिकता की विविध प्रकार से स्थापना की है। स्मृति आदि में वेदों की महत्ता का विशद वर्णन किया गया है। वहां "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः"[2] "श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै"।[3] इत्यादि वचनों में वेदों की प्रामाणिकता दिखलाते हुए वेद-विरोधियों की निन्दा भी की गई है—"नास्तिको वेदनिन्दकः, "वेदनिन्दां च वर्जयेत्"[4] आदि। इसी प्रकार महाभारत में अनेक स्थलों पर वेदों की प्रामाणिकता का उल्लेख किया गया है। एक

१. मीमांसासूत्र १।२।३१-५३।। २. मनु० २।१३।।
३. वही २।८।। ४. वही २।११; ४।१६३।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थल पर व्यास जी युधिष्ठिर से कहते हैं—"**वेदप्रमाणविहितं धर्मं च ब्रवीमि ते**" (शान्ति० २४।१८), "**कुर्वन्ति धर्मं मनुजाः श्रुतिप्रामाण्यदर्शनात्**" (शान्ति० २६७।३३), वहां स्पष्टतः कहा गया है कि लोकों के लिये वेद प्रमाण है "**वेदाः प्रमाणं लोकानाम्**" (शान्ति० २७०।१) यद्यपि स्मृति तथा महाभारत में यह विवेचन नहीं उपलब्ध होता कि "वेद क्यों प्रमाण हैं" तथापि महाभारत में एतद्विषयक कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं, जैसे "**आम्नायवचनं सत्यम्**" (शान्ति० २६०।६)। इनसे प्रतीत होता है कि सत्य होना ही वेद-प्रामाण्य का आधार है। इसी प्रकार की धारणा ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों में निहित है।

दर्शनों में वेद-प्रामाण्य

वेद-प्रामाण्य का व्यवस्थित विवेचन दर्शन के क्षेत्र में किया गया। वैदिक दर्शनों के सूत्रों में अनेकशः श्रुतिप्रामाण्य का विविध शब्दों में उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ—वैशेषिकसूत्र में '**वेदलिंगाच्च**' (४।१।११), '**वैदिकं च**' (५।२।१०) न्यास सूत्र में '**श्रुतिप्रामाण्याच्च**' (३।१।३२), सांख्यसूत्र में '**मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः**' (१।५) '**श्रुत्या सिद्धस्य नापलापः**' (२।१४७), '**श्रुतेश्च**' (३।८०) '**श्रुतितश्च**' (५।१) इत्यादि। इसी प्रकार मीमांसासूत्र[1] तथा ब्रह्मसूत्र[2] में कितने ही स्थलों पर श्रुति को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है। दर्शन के सूत्र ग्रन्थों के काल तथा पौर्वापर्य के विषय में विद्वानों का मत-भेद है। अतः यह कहना कठिन है कि किस काल में दर्शन के क्षेत्र में वेदों की प्रामाणिकता का निरूपण किया गया था। हां इस में सन्देह नहीं कि इन सूत्रों को आधार बनाकर ही अग्रिम

---

१. मीमांसासूत्र ६।३।१३॥, ७।१।१॥ इत्यादि।

२. ब्रह्मसूत्र १।१।११, ३।४।४६ इत्यादि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या-ग्रन्थों में वेद-प्रामाण्य अथवा ज्ञान-प्रामाण्य का संक्षिप्त या विस्तृत विवेचन किया गया।

वेदों की प्रामाणिकता शब्द-प्रामाण्य का ही अंग है। अतः इस के साथ-साथ शब्द-प्रामाण्य की यथार्थता पर विचार किया जाने लगा। तदनन्तर सभी प्रमाणों की प्रामाणिकता विचार का विषय बन गई। वेदों की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए कुमारिल भट्ट कहते हैं—

सर्वविज्ञानविषयमिदं तावत् प्रतीक्ष्यताम्।
प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः किं परतोऽथवा ॥[1]

प्रामाण्य-विचार के इस विकास-क्रम का जयन्त भट्ट ने स्पष्टतः निरूपण किया है। वे कहते हैं—शब्द का प्रामाण्य कैसे होता है? इस विषय में विचार करते हुए जैमिनि के अनुयायियों ने यह भूमिका बनाई कि प्रामाण्य तथा अप्रामाण्य स्वतः होता है या परतः। सभी ज्ञानों के विषय में यह विचार कर लेना चाहिये।[2]

ज्ञानों के प्रामाण्य-तथा अप्रामाण्य का भारतीय दर्शन के ग्रन्थों विशेषकर व्याख्या ग्रन्थों में विस्तार से विचार किया गया है। वहां ज्ञानों की उत्पत्ति, ज्ञप्ति और कार्य की दृष्टि से प्रामाण्य के स्वतस्त्व और परतस्त्व का विशद विवेचन मिलता है। वैदिक तथा

---

१. श्लोकवार्त्तिक, १।१।२।३३॥

२. प्रमाणत्वं तु शब्दस्य कथमित्यत्र वस्तुनि।
जैमिनीयैरयं तावत् पीठबन्धो विधीयते ॥
प्रामाण्यमप्रामाण्यं वा सर्वविज्ञानगोचरः।
स्वतो वा परतो वेति प्रथमं प्रविविच्यताम् ॥

न्यायमंजरी, भाग १, पृ० १४६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवैदिक दर्शनों ने इस विषय में अपने-अपने मत स्थापित किये हैं और अन्यों के मतों का विरोध भी किया है। यहां प्रामाण्यवाद की विशेष चर्चा न करते हुए वेदों की प्रामाणिकता पर विचार करना ही वांछनीय है।

वेद-विरोधी मत

प्रथमतः वेद-विरोधियों के मत द्रष्टव्य हैं। इनमें चार्वाक का मत अग्रगण्य है। यद्यपि आज इस नाम से कोई विचारधारा हमारे सामने नहीं है, तथापि इस प्रकार के मत समाज के विभिन्न स्तरों में दृष्टिगोचर होते हैं। ऋषि दयानन्द ने सर्वदर्शन-संग्रह के आधार पर चार्वाक के कतिपय मत प्रस्तुत किये हैं। चार्वाक ने यज्ञ में पशु-बलि, मृतक-श्राद्ध आदि की खिल्ली उड़ाई है और कहा है कि वेदों के कर्त्ता धूर्त जन हैं। उन्होंने केवल युक्ति और तर्क से ही वेदों की अप्रामाणिकता नहीं दिखलाई अपितु नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी वेदों की भर्त्सना की है। और जिस कर्म-कलाप को आज का बुद्धिवादी दम्भीजनों की जीविका का साधनमात्र समझता है उसे चार्वाक ने बुद्धिपौरुषहीन जनों की जीविका का साधन बतलाया है—

'बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः' सर्वदर्शनसंग्रह। अष्टम शती की कृति माने गये "तत्त्वोपप्लवसिंह" नामक ग्रन्थ में तो वेदप्रामाण्यवादियों के विविध तर्कों एवं युक्तियों का विस्तार से खण्डन किया गया है। चार्वाक ने ही नहीं, बौद्ध तथा जैन मत के साहित्य में भी प्रायः इसी प्रकार की युक्तियों से ही वेदों की प्रामाणिकता का विरोध किया गया है। सम्भवतः महात्मा बुद्ध ने स्पष्टतः वेदों को अप्रामाणिक नहीं कहा, तथापि उपलब्ध त्रिपिटक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ग्रन्थों से यह प्रतीत होता है कि बुद्ध की वेदों के प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। परवर्ती बौद्ध दर्शन में तो मीमांसकों की युक्तियों का विरोध करते हुए वेद की प्रामाणिकता के एक आधार 'अपौरुषेयता' का निराकरण किया गया है। यह भी कहा गया है कि यदि वेद को अपौरुषेय भी मान लिया जाये तो भी वेद के अर्थ का निश्चय न होने से ही वेद प्रमाण न हो सकेगा।[1] वेद को प्रमाण मानने वालों को धर्मकीर्ति "ध्वस्तप्रज्ञ" कहते हैं। इसी प्रकार जैन दर्शन के विविध आचार्यों ने वेद-प्रामाण्य का विरोध किया है। आचार्य अकलंक, प्रभाचन्द्र, वादिराज सूरि, तथा मल्लिषेण आदि के ग्रन्थों में वेद-प्रामाण्य-विरोधी युक्तियां उपलब्ध होती हैं। किसी त्रिकालसिद्ध सर्वज्ञ पुरुष ईश्वर की सत्ता इन्हें अभिमत नहीं, परस्पर-विरुद्ध कथनों आदि के कारण वेदों को सर्वज्ञ की कृति नहीं माना जा सकता।[2]

वेद-विरोधियों के आक्षेपों का परिहार

इस प्रकार के आक्षेपों का परिहार अनेक वेदानुयायी विचारकों ने किया है न्यायसूत्र और मीमांसा सूत्र से लेकर परवर्ती टीकाकारों पर्यन्त ने वेद-प्रामाण्य-विरोध-परिहार के साथ-साथ वेद-प्रामाण्य की साधक युक्तियों को भी प्रस्तुत किया है। फिर भी उन्होंने अपने घर की भूल को स्वीकार नहीं किया। वेद के नाम पर जो असामाजिक तथा अनैतिक व्यवहार प्रचलित हो गये थे, उनका वे प्रतिवाद न कर सके।

---

१. द्र०, धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्तिक, स्वार्थानुमान का० २२५ तथा आगे।

२. द्र०, मल्लिषेण, स्याद्वादमंजरी (पृ० २८)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में वेद-प्रामाण्य

१८ वीं शती में पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का अनुशीलन करना आरम्भ किया। उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त से लेकर परवर्ती भाष्यों तक का समीक्षात्मक परीक्षण करने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को ही वेद-व्याख्या का प्रमुख आधार माना, कुछ ने मध्य के भाष्यकारों को अधिक सम्मान दिया, अन्यों ने मध्यम मार्ग ही उचित समझा। फिर भी प्रायः सभी का दृष्टिकोण ऐतिहासिक ही रहा। उन्होंने वेदों में ऐतिहासिक नाम और स्थान आदि खोजे और निर्णय दिया कि जिस-समय वेद के विभिन्न अंशों की रचना हुई उस-उस समय की धार्मिक सामाजिक और ऐतिहासिक घटनाओं को ये सूचित करते हैं। फलतः ऐतिहासिक दृष्टि से ही इन्हें प्रमाण कहा जा सकता है।

वेद-प्रामाण्य का द्वैविध्य—परतःप्रमाण एवं स्वतःप्रमाण

वेद को प्रमाण मानने वाले मनीषियों ने अपने मत के समर्थन के लिये अनेक युक्तियां दी हैं। उपलब्ध व्याख्याओं के आधार पर उन विचारकों को दो वर्गों में रक्खा जा सकता है। एक तो वे हैं जो आप्तोक्त होने से वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं। इस वर्ग में न्याय-वैशेषिक तथा योग को रक्खा जा सकता है। इनका अभिप्राय यह है—आप्तों का वचन प्रमाण होता है। वेद का प्रणेता भी परम आप्त है। अतः वेद-वचन तथा तत्प्रतिपादित ज्ञान प्रमाण है। न्याय-वैशेषिक के सूत्रों तथा व्याख्याओं में इस विचार का बहुशः प्रतिपादन किया गया है।[1] योग-भाष्य तथा

---

१. (क) तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वै० सूत्र १।१।३॥
(ख) मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्॥ न्यायसूत्र २।१।६९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी व्याख्याओं से भी यही विदित होता है।[1] इस मत में वेद की प्रामाणिकता तभी सिद्ध होती है, जब वेदों को आप्त प्रणीत या ईश्वर-प्रणीत सिद्ध कर दिया जाये। न्याय वैशेषिक आदि में एतद्विषयक प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से वेदों का प्रामाण्य परतः है अर्थात् वेद आप्तोक्त हैं, इसलिये प्रमाण हैं।

दूसरा वर्ग वेदों को स्वतःप्रमाण मानता है। इस वर्ग में मीमांसा-सूत्र में कहा गया है– वेद प्रतिपादित ज्ञान स्वतःप्रमाण है, उसकी प्रामाणिकता के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं।[2] शबर स्वामी, कुमारिल भट्ट तथा प्रभाकर मिश्र आदि ने इस भाव को अधिक स्पष्ट किया है[3], जिसका आगे निरूपण किया जा रहा है। ब्रह्मसूत्र में "शास्त्रयोनित्वात्" (१।१।३) तथा "तत्तु समन्वयात्" (१।१।४) आदि सूत्रों द्वारा वेदप्रामाण्य का संकेत किया गया है। भाष्यों तथा भाष्यों की विविध टीकाओं में इस का स्पष्टीकरण मिलता है। वाचस्पति मिश्र की भामती टीका इस विषय में अत्यधिक उपयोगी है। वस्तुतः पूर्वमीमांसा और वेदान्त के प्राचीन ग्रन्थों में वेद-प्रामाण्य का इतना स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता, जितना परवर्ती ग्रन्थों में। सांख्यमत में वेद को स्वतःप्रमाण सिद्ध करने के लिये "निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्" (५।५१) यह सूत्र दिया गया है। इसका क्या अभिप्राय है? यह आगे दिखलाया जा रहा है।

---

१. योगभाष्य १।१४ तथा तत्त्ववैशारदी।

२. तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्। मीमांसा सूत्र १।१।५॥

३. न ह्येवं सति प्रत्ययान्तरमपेक्षितव्यम्, पुरुषान्तरं वापि। स्वयं प्रत्ययो ह्यसौ। शाबरभाष्य, मीमांसासूत्र। १।१।५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द के मत में वेद स्वतःप्रमाण

ऋषि दयानन्द भी वेदों को स्वतःप्रमाण मानते हैं, किन्तु वे सभी वैदिक दर्शनों का समन्वय करते हैं। अतः उनकी दृष्टि में सभी वैदिक दर्शनों के अनुसार वेद स्वतःप्रमाण हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में कई प्रसंगों में कहा था--वेद स्वतःप्रमाण हैं।[1] उनके समकालीन अन्य जनों ने भी यह निश्चित रूप से जान लिया था कि स्वामी जी के मत में वेद प्रमाण हैं। Hinduism and Christianity में पादरी जान रावसन ने लिखा था—उनके अनुसार "वेदों में एक भी भ्रान्तिमूलक बात नहीं है"। इसी प्रकार के विचार ब्रह्मसमाज पत्रिका कलकत्ता (१८७२-७३) में प्रकट किये गये थे। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वे कहते हैं—**ये स्वतः-प्रमाणभूता मन्त्रभागसंहिताख्याश्चत्वारो वेदा उक्ताः** जो स्वतः-प्रमाण मन्त्र संहिता नामक चार वेद कहे गये हैं।[2] इसी प्रकार स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश[3] तथा भ्रमोच्छेदन[4] में उन्होंने वेदों को स्वतःप्रमाण बतलाया है। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेद-नित्यता के संदर्भ में व्याकरण शास्त्र तथा दर्शन शस्त्र के एतद्विषयक मतों का उल्लेख किया है। उस समस्त सन्दर्भ की व्याख्या करना यहां अभिप्रेत नहीं है। यह अवश्य उल्लेखनीय है कि ऋषि की उन व्याख्याओं में आज की प्रचलित व्याख्याओं से कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इस विषय के स्पष्टीकरण के लिये तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

---

१. पटना १८७३ ई०, उदयपुर १८८२ ई०।

२. ऋग्वेदादि०, ग्रन्थप्रामाण्य०, पृ० ३११।

३. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश २।

४. भ्रमोच्छेदन, दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, पृ० २६२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसकों द्वारा वेद-प्रामाण्य प्रतिपादन

वेदों को स्वतःप्रमाण मानने वालों में पूर्वमीमांसा अग्रणी है। उस के अनुसार प्रमाण की दो विशेषताएं हैं—एक अज्ञात अर्थ की बोधकता और दूसरी दोषाभाव (करण-दोष-ज्ञान तथा बाध-ज्ञान का अभाव)[1]। वेदवाक्यों द्वारा प्रत्यक्ष, अनुमान आदि से न जानने योग्य धर्म तथा उस के फल का बोध होता है उस में करण-दोष-ज्ञान तथा बाधज्ञान का अभाव भी नहीं है। अतः वे प्रमाण हैं। और उनके प्रामाण्य का निश्चय करने के लिये किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं, अतः वे स्वतःप्रमाण हैं।[2] शवरस्वामो तथा कुमारिल भट्ट ने यह भी स्पष्ट किया है कि अपौरुषेय होने में वेद दोषरहित हैं, दोष तो पुरुषाश्रित होते हैं[3]। इस प्रकार वेद प्रमाण हैं और सभी प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतःसिद्ध है, फलतः वेद भी स्वतःप्रमाण हैं। उन्होंने वेदों की नित्यता तथा अपौरुषेयता को विविध युक्तियों से सिद्ध किया है। मीमांसा सूत्र तथा भाष्य में जो वेदों की नित्यता को सिद्ध करने का महान् संरम्भ दृष्टिगोचर होता है वह वेदों की अपौरुषेयता को प्रतिपादित करने के लिये है।

जो वस्तुएं नित्य हैं, वे अपौरुषेय होती हैं। न तो यह व्याप्ति है कि जो वस्तु अपौरुषेय होती है वह नित्य होती है व्योम आदि में यह नियम लागू नहीं होता। और न यहा व्याप्ति है कि जो नित्य है वह प्रमाण है, आकाश आदि नित्य हैं फिर भी प्रमाण

---

१. यस्य च दुष्टं कारणं यत्र च मिथ्येति प्रत्ययः, स एवासमीचीनः प्रत्ययः, नान्य इति। शावरभाष्य १।१।५॥

२. वही, १।१।५॥

३. यद्वा वक्तुरभावेन न स्युर्दोषा निराश्रयाः। श्लो० वा० १।१।२।६३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं माने जाते (श्लो० वा० १।१।२।२७)। फिर भी अनेक स्थलों पर नित्य होने से वेदों को प्रमाण कहा गया है जो चिन्तनीय है। कई स्थलों पर "अस्मर्यमाण कर्तृकत्व" से अपौरुषेयता सिद्ध की गई है। अपौरुषेय होने से जो वेदों में दोषों का अभाव निश्चित किया जाता है वह केवल उन की अप्रामाणिकता की शंका का समाधान करता है, प्रामाणिकता का निश्चय कराने वाला साधन नहीं है। फलतः वेदों की प्रामाणिकता का निश्चय कराने के लिये किसी भावरूप साधन की अपेक्षा नहीं होती वे स्वतःप्रमाण हैं। वेदों की अपौरुषेयता को पार्थसारथि मिश्र ने और अधिक स्पष्ट किया है। वे कहते हैं वेद में पुरुष के सम्वन्ध की शंका तीन प्रकार से हो सकती है—(१) पद-पदार्थ का सम्वन्ध करने के लिये, (२) वाक्य, वाक्यार्थ का सम्बन्ध करने के लिये अथवा (३) जिस प्रकार महाभारत आदि के कर्त्ता हैं इसी प्रकार वेद की रचना के लिये। इन तीनों प्रकारों से ही वेद में पुरुष का सम्बन्ध निश्चय नहीं होता, क्योंकि (१) मीमांसा का मन्तव्य है कि पद पदार्थ का सम्वन्ध नित्य है। (२) वाक्यार्थ भी पदार्थों के आधार पर हो जाता है और (३) वेदों का कर्त्ता कोई नहीं है।[1] इस प्रकार श्लोकवार्त्तिक तथा परवर्ती टीकाग्रन्थों में प्रतिपक्षिओं के आक्षेपों का परिहार करते हुए वेद स्वतःप्रमाण हैं, यह प्रतिपादित किया गया है।

नव्य वेदान्तियों द्वारा वेद-प्रामाण्य का प्रतिपादन

नव्य वेदान्त में सभी प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतःसिद्ध माना

---

१. शास्त्रदीपिका (विद्याविलास प्रेस, काशी वि० सं० १९६४) पृ० १५१-१५२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। भामतीकार ने कहा है कि अज्ञात, अबाधित तथा असन्दिग्ध अर्थ का बोधक प्रमाण होता है। वेद भी धर्म आदि अज्ञात अर्थ के बोधक हैं, उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थ का किसी प्रमाण से बोध नहीं होता, वह अर्थ सन्दिग्ध भी नहीं, अतः वेद प्रमाण हैं।[1] अपौरुषेय होने से उन में दोषों की शंका भी नहीं की जा सकती। यद्यपि नव्य वेदान्त में वेदों को स्वरूपतः नित्य नहीं माना जाता।[2] ईश्वर सर्वज्ञ है जो पूर्व-पूर्व सर्ग के समान ही अग्रिम-अग्रिम सर्गों में वेदों की रचना किया करता है। अतः वेद प्रवाह से नित्य है तथापि वेद अपौरुषेय तो है ही। ईश्वर वेद की रचना में स्वतन्त्र नहीं है, रचना में पुरुष (परमेश्वर) का स्वतन्त्र न होना ही वेद की अपौरुषेयता है।[3] यहां भी अपौरुषेयता ही दोषभाव का निमित्त है, किन्तु अपौरुषेयता के स्वरूप में पूर्वमीमांसा से अन्तर है।

सांख्यशास्त्रानुसार वेद का स्वतःप्रामाण्य

उपलब्ध व्याख्याओं से विदित होता है कि सांख्यसूत्र के अनुसार वेद नित्य नहीं।[4] वे पौरुषेय भी नहीं, क्योंकि उनके कर्ता पुरुष का अभाव है[5], यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक पुरुष ने उन की रचना की थी। वहां अपौरुषेयता में जो युक्ति दी गई है वह पूर्वमीमांसा की "अस्मर्यमाणकर्तृकत्वात्" के समान ही है।

---

१. भामती (निर्णय सागर, १९३८), १।१३, पृ० ९६।
२. अस्माकं तु मते वेदो न नित्यः। वेदान्तपरिभाषा चतुर्थ परिच्छेद।
३. भामती, १।१।३॥
४. न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः। सांख्यसूत्र ५।४५॥
५. न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्। वही ५।४६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस पर प्रतिपक्षियों के आक्षेप होते रहे हैं। हां, सांख्य में अपौरुषेयता का वेदप्रामाण्य से कोई सम्बन्ध नहीं दिखलाया गया। यहां वेदों के स्वत:प्रामान्य में हेतु यह दिया गया है—

"निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्" इस सूत्र के अर्थ में विवाद है। अनिरुद्ध-वृत्ति के अनुसार उसका अर्थ है—ज्ञान का प्रामाण्य निज शक्ति=ज्ञान जनक सामग्री मात्र के अधीन है, उस शक्ति की अभिव्यक्ति होने से ज्ञानों का स्वत:प्रामाण्य होता है।[1] इस वृत्ति के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में ज्ञान प्रामाण्य का निरूपण किया गया है वेदों की प्रामाणिकता का नहीं। यह अवश्य कहा जा सकता है जब सभी ज्ञान प्रमाण हैं तो वेद प्रतिपादित ज्ञान भी प्रमाण है ही। सांख्य-प्रवचन-भाष्य के अनुसार सूत्र का अर्थ है—वेदों की जो अपनी यथार्थ बोध कराने की स्वाभाविक शक्ति है जो मन्त्र, आयुर्वेद आदि में अभिव्यक्त होती है अर्थात् उपलब्ध होती है, उससे सभी वेदों का स्वत:प्रमाण्य सिद्ध है।[2] ऋषि दयानन्द ने भी सांख्य के मत को प्रस्तुत करते हुए यह सूत्र उद्धृत किया है और कहा है—निज शक्ति से अभिव्यक्ति होने से अर्थात पुरुष के साथ रहने वाली प्रकृति के सामर्थ्य से प्रकट होने के कारण वेदों का स्वत:प्रामाण्य तथा नित्यत्व स्वीकार करना चाहिये।[3] यहां इतना स्पष्ट है कि सांख्य की दृष्टि में वेदों का स्वत:प्रामाण्य है, किन्तु क्यों ? यह विवाद का विषय है।

---

१. द्र० अनिरुद्धवृत्ति ५।५१॥

२. वेदानां निजा स्वाभाविकी या यथार्थज्ञानजननशक्तिस्तस्या मन्त्रायुर्वेदादावभिव्यक्तेः=उपलम्भाद् अखिलवेदानामेव स्वत एव प्रामाण्यं सिध्यति। सांख्यप्रवचनभाष्य, ५।५१॥

३. ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ३८ (सं०)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो रही शास्त्र की दृष्टि से वेदों के स्वतःप्रामाण्य की बात। अब देखना है कि ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वेदों के स्वतः-प्रामाण्य का क्या स्वरूप है ?

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में 'स्वतःप्रामाण्य' का स्वरूप

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में ऋषि दयानन्द कहते हैं— वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनका प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं,[1] इस प्रकार प्रामाण्य के निश्चय के लिये अन्य साधन की अपेक्षा न रखना जो स्वतःप्रमाण्य का स्वरूप है, वह वेदों में भी विद्यमान है। इसी भाव को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी कई स्थलों पर व्यक्त किया गया है। वेदनित्यता के सन्दर्भ में कहा है—वेद के प्रामाण्य की सिद्धि के लिये अन्य प्रमाण का ग्रहण नहीं किया जाता, किन्तु अन्य शास्त्रों के प्रमाण को साक्षी के समान समझना चाहिये, क्यों कि वेद स्वतःप्रमाण हैं। सूर्य के समान, जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित होता हुआ संसार के बड़े या छोटे पर्वत आदि से लेकर त्रसरेणु पर्यन्त पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही वेद स्वयं प्रकाश हो कर सब विद्याओं को प्रकाशित करता हैं।[2] यही विचार ग्रन्थ-प्रामाण्याप्रामाण्य के प्रसंग में भी प्रकट किया गया है। वहां सूर्य के साथ प्रदीप का दृष्टान्त भी दिया गया है। और अपने मन्तव्य को दृढतापूर्वक इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है—"तत्र वेदेषु वेदानामेव प्रामाण्यं स्वीकार्यं सूर्य—प्रदीपवत्[3] वेदों में वेदों का ही

१. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश २।
२. ऋग्वेदादि० वेदनित्यत्व पृ० ३९ (सं०)।
३. वही ग्रन्थप्रामाण्य० पृ० ३११।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रामाण्य स्वीकार करना चाहिये, सूर्य और प्रदीप के समान। सूर्य और प्रदीप के दृष्टान्त से ऋषि ने दो तथ्यों को प्रकट किया है—एक यह कि वेद स्वयं प्रकाश (स्वतःप्रमाण) हैं, उनके प्रकाश के लिये अन्य प्रकाश (प्रमाण) की आवश्यकता नहीं और दूसरा यह कि वे अन्य सभी सत्य विद्याओं के प्रकाशक हैं।

ऋ० द० द्वारा वेदविरोधी मतों का निराकरण

उन्होंने वेद के विरोधी मतों का भी निराकरण किया है। चार्वाक के विरोध का परिहार करते हुए वे कहते हैं—"अग्निहोत्र आदि से जैसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि होती है, उसको न जानकर वेद, ईश्वर और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है"।[1] वेदों के विषय में इस प्रकार के विचार प्रकट करने वालों की उन्होंने अविद्या तथा बुद्धिहीनता दिखलाई है। साथ ही यह भी कहा है—"भाण्ड धूर्त, निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्तता है वेदों की नहीं"[2] इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि चार्वाक के उद्भव से पूर्व कौन ऐसे वेदभाष्यकार थे जिन्होंने वेद की इस प्रकार की व्याख्या की थी और ऋषि ने आदि (महीधरादि) शब्द के द्वारा जिनकी ओर संकेत किया है। वेदों के विरोध में प्रस्तुत किए गए यज्ञों में पशु-बलि तथा मृतक-श्राद्ध आदि को ऋषि ने वेदविरुद्ध बतलाया। जो बातें सहस्राब्दियों से वैदिक मत का अंग बन गई थीं, ऋषि ने साहस के साथ उन्हें अवैदिक घोषित किया। आश्चर्य तथा खेद की बात है कि वेद-विरोधियों के विरोधों का परिहार करते हुए भी मध्यकाल के

१. सत्यार्थप्रकाश, समु० १२, पृ० ६१३।

२. वही, पृ० ६१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदानुयायी यह साहस न कर सके कि ऐसे विचारों को वेद-बाह्य घोषित कर देते । ऋषि दयानन्द ने "लौटो वेदों की ओर" कहते हुए यह स्पष्टतः घोषणा की—"जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोल कल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करके आदि दुष्ट कामों की प्रवृति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया, इन्हीं बातों को देखकर चार्वाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेद विरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया"।[1] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द की दृष्टि में किसी अमानवीय या आसामाजिक भाव होने की शंका भी नहीं की जा सकती।

आधुनिक विद्वानों के इतिहासवाद तथा आख्यानवाद का भी उन्होंने प्रतिवाद किया है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा ऋग्वेद-भाष्य का नमूने का अंक आदि में विलसन तथा मैक्समूलर आदि के मतों का निराकरण देखा जा सकता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (पृ० २९) में वेद मनुष्यकृत हैं, वेदों में भौतिक देवों की पूजा का उल्लेख है (पृ० ८० सं०) आर्यों को पहले ईश्वर का ज्ञान नहीं था (पृ० ८३ सं०) इत्यादि मतों का खण्डन किया गया है तथा कुछ प्रसिद्ध आख्यानों के बोधक माने गये संदर्भों के यौगिक अर्थ दिखलाये गये हैं।[2] ऋषि की दृढ़ धारणा है कि वेदों में लौकिक इतिहास या अनित्य इतिहास नहीं है। जहां मन्त्रों में इतिहास सा दृष्टिगोचर होता है, जैसे '**त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्**" यजु० ३–६२, वहां वस्तुतः इतिहास की भ्रान्ति ही है। ब्राह्मणों

---

१. सत्यार्थप्रकाश समु० १२ पृ० ६११-६१८।

२. द्र०, ऋग्वेदादि०, ग्रन्थप्रामाण्य०, पृ० ३१७-३५२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार जमदग्नि का अर्थ है "चक्षु" और कश्यप का अर्थ है "प्राण"।[1] इस प्रकार उन्होंने मानव-कल्याण पर दृष्टि रखते हुए शास्त्र और बौद्धिकता का समन्वय किया,यौगिक प्रक्रिया के आधार पर वेदों की व्याख्या कर के यह दिखला दिया कि वेद तो वैयक्तिक और सामाजिक धर्म के विषय में प्रमाण हैं, ये किसी ऐतिहासिक परिस्थिति के बोधक नहीं है।

वेदों में स्वत:प्रामाण्य में हेतु

यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि बुद्धि के आधार सत्य की कसौटी से ही वेदों की व्याख्या करना अभीष्ट था तो वेदों को एक ओर रखकर केवल तर्क और बुद्धि के बल पर ही ऋषि दयानन्द ने सत्य का प्रकाश और प्रचार क्यों नहीं किया इस प्रकार का प्रश्न उनके समक्ष पं० महेशचन्द न्यायरत्न ने भी प्रस्तुत किया था। उनके शब्दों में इसका उत्तर यह है—**मैं वेदों में कोई बात युक्ति विरुद्ध या दोष को नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है**"[2] वस्तुत: वे ईश्वरीय ज्ञान के रूप में वेदों को प्रमाण मानकर चले थे।[3] उन्होंने आर्यावर्त और आर्य जाति के उत्थान के लिये वेदों का आश्रय लेना अनिवार्य समझा था। ब्रह्म-समाज और प्रार्थना समाज की समीक्षा के प्रसंग में वे कहते हैं—"जब सर्व सत्य वेदों में प्राप्त होता है, जिनमें असत्य कुछ भी नहीं, तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानि मात्र कर लेनी है। इसी बात से तुमको आर्यावर्तीय लोग अपने

१. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदसंज्ञा (सं०), पृ० ६२१।
२. भ्रान्तिनिवारण, द० ल०, पृ० १९६।
३. द्र०, सत्यार्थप्रकाश, समु० ११, पृ० ५७८।

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान ... तिथि ... पु०सं० 1983 ... पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं समझते और तुम आर्यावर्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके"[1]। उन्होंने स्वयं ही वेद का आश्रय नहीं लिया, अपितु भारत की जनता में नव जागरण की कामना करने वाले सभी जनों से यह आग्रह किया "भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो?"[2] ऋषि की दृष्टि में मानव का जीवनोपयोगी सभी ज्ञान बीज रूप में वेदों में विद्यमान हैं सत्यविद्या का अर्थ हैं मानवहितकारी विद्या। इसीलिये उन्होंने वेदों को स्वतःप्रमाण माना है।

ऋषि की दृष्टि में चारों वेद निर्भ्रान्त हैं अतः स्वतःप्रमाण हैं, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में वे लिखते हैं—"चारों वेदों (विद्या-धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूं"[3]। इस प्रकार वेदों के स्वतःप्रामाण्य में हेतु है उनका भ्रान्तिरहित होना। कुछ सन्दर्भों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि दयानन्द ईश्वरोक्त होने से वेदों को स्वतःप्रमाण मानते हैं। यदि ईश्वरोक्त होने से वेदों को प्रमाण माना जाये तब तो उसका प्रामाण्य आप्तोक्त होने के कारण ही होगा और नैयायिक के समान परतःप्रामाण्य ही माना जा सकेगा। अतः ऋषि का मन्तव्य यही प्रतीत होता है कि वेद निर्भ्रान्त होने से स्वतःप्रमाण हैं।

कुछ सन्दर्भों में उन्होंने जो ईश्वरोक्त होने से वेदों को स्वतः प्रमाण कहा है, जैसे वेदनित्यता के प्रसंग में वे कहते हैं—"अत

१. सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ५७८।
२. वही, समु० ११ पृ० ५७८।
३. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश २।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरोक्तत्वान् नित्यधर्मकत्वाद् वेदानां स्वतःप्रामाण्यम्"[1] ऐसे सन्दर्भों में यह मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि यहां स्वतःप्रामाण्य के हेतु का हेतु बतलाया जा रहा है। भाव यह है कि वेदों का स्वतःप्रामाण्य तो निर्भ्रान्ति होने के कारण हैं और वेद निर्भ्रान्ति हैं। इसमें दो हेतु हैं—एक तो उनका ईश्वरोक्त होना और दूसरा नित्य होना। यहां नित्यधर्मकत्वाद् में वेदों के नित्य होने का हेतु भी कह दिया गया है। इसका अर्थ होगा नित्यधर्म वाला होने से। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, ईश्वर के ज्ञान आदि धर्म नित्य हैं अतः वेद-नित्य हैं। इसका विशद विवेचन अन्यत्र किया गया है।

वैदिक दर्शनों में परस्पर मतभेद मानकर ऐसा समझा जाता है कि न्याय आदि के मत में वेद आप्तोक्त होने से प्रमाण हैं, अतः उनका प्रामाण्य परतः होता है और पूर्वमीमांसा के अनुसार वेद नित्य तथा अपौरुषेय होने से दोषरहित हैं अतः उनका प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है। ऋषि दयानन्द तो षड्दर्शन का समन्वय करते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में भी उन्होंने समन्वय किया है। उनकी दृष्टि में ईश्वरोक्त मानने से ही वेदों की निर्दोषता सिद्ध होती है: वस्तुतः वेद निर्दोष होने से ही प्रमाण हैं। आप्त की कृति होने से वेद प्रमाण हैं अथवा अपौरुषेय होने से, इन दोनों मन्तव्यों में दोषाभाव ही प्रामाण्य का निमित्त है। इस तथ्य की ओर कुमारिल भट्ट ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था।[2] न्याय-वैशेषिक के व्याख्याकार

---

१. ऋग्वेदादि० वेदनित्यत्व पृ० ३६।

२. शब्ददोषोद्भवस्तावद् वक्त्रधीन इति स्थितिः।
तदभावः क्वचित्तावद् गुणवद्वक्तृकत्वतः॥
तद्गुणैरपकृष्टानां शब्दे संक्रान्त्यसम्भवात्।
यद्वा वक्तुरभावेन न स्युर्दोषा निराश्रयाः॥ श्लो०वा० १।१।२।६२,६३॥

पाणिनि कन्या महाविद्यालय तिथी ... पु०सं० 1983

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीधर ने इस तथ्य को स्पष्ट किया था। प्रामाण्य दोषाभाव से होता है, नित्यत्व से नहीं, क्योंकि नित्य न होने पर भी दोषों से रहित चक्षु आदि प्रमाण होते हैं। उस पुरुषविशेष में दोष नहीं है अतः उसके द्वारा प्रणीत वेद के पौरुषेय होने पर भी वह प्रमाण है (न्यायकन्दली, पृ० २१६)।

अपने अभिमत को स्पष्ट करते हुए ऋषि ने वतलाया है—जो ईश्वरोक्त ग्रन्थ हैं उन्हें स्वतःप्रमाण मानना उचित हैं, जो जीवोक्त है वे परतःप्रमाण के योग्य हैं। ईश्वरोक्त होने से चारों वेद स्वतः-प्रमाण हैं। ईश्वर की वाणी में भ्रम आदि दोष नहीं हो सकते। वह तो सर्वज्ञ सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिमान है।[1] इस प्रकार ऋषि की दृष्टि में ईश्वरोक्त तथा नित्य होने से से वेद भ्रमादि दोष-रहित हैं, अतः स्वतःप्रमाण हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ऋषि के अभिमत में वेदों के स्वतःप्रामाण्य में सभी वैदिक दर्शनों के मन्तव्य का समन्वय है। केवल न्या० वै० के परतःप्रामाण्य और पूर्वमीमांसा के स्वतः-प्रामाण्य का ही यहां समन्वय नहीं, अपितु पूर्वमीमांसा और नव्य-वेदान्त के अभिप्रेत स्वतःप्रामाण्य का जो अवान्तर भेद है उसे भी दूर करने का प्रयास किया गया है। ऋषि ने वेद को पूर्वमीमांसा के समान नित्य तो माना है, किन्तु नव्यवेदान्त के समान प्रवाह से नित्य स्वीकारा है। प्रत्येक सर्ग के आदि में पूर्व-पूर्व सर्ग के समान

---

१. ये ईश्वरोक्ता ग्रन्थास्ते स्वतःप्रमाणं कर्तुं योग्याः सन्ति, ये जीवोक्तास्ते परतःप्रमाणार्हाश्च। ईश्वरोक्तत्वाच्चत्वारो वेदाः स्वतःप्रमाणम्। कुतः ? तदुक्तौ भ्रमादिदोषाभावात्, तस्य सर्वज्ञत्वात्। सर्वविद्यावत्त्वात् सर्वशक्तिमत्त्वाच्च। ऋग्वेदादि०, ग्रन्थप्रामाण्य०, पृ० ३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही ईश्वर-सर्वज्ञ ईश्वर-वेदों को प्रकट किया करता है, ईश्वर का ज्ञान नित्य है। उस ज्ञान के अनुसार प्रकट होने वाले शब्द आदि भी नित्य हैं। वेदान्त की अभिमत अपौरुषेयता उनके इस मत में विद्यमान है। साथ ही वेदों को इसलिये अपौरुषेय कहा जा सकता है, क्योंकि वेद सामान्य पुरुष द्वारा प्रणीत नहीं, ईश्वर पुरुष विशेष प्रणीत हैं। हां, उन्होंने नित्य तथा अपौरुषेय होने से वेदों को अभ्रान्त नहीं कहा, अपितु ईश्वरोक्त होने से ही। इस अंश में उनका मत पूर्वमीमांसा से हटकर भी न्या० वै० के मत का समन्वय करता है। वस्तुतः वेदानुयायियों की वेदप्रामाण्यविषयक धारणाओं को उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे एक विन्दु पर मिलती दृष्टिगोचर होती हैं।

1983

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.